2019.01.0511

'मैं दलित रंगमंच का पक्षधर हूं'

मराठी के बहुचर्चित नाटककार-निर्देशक सतीश आलेकर से आनंद गुप्त की बातचीत

थियेटर अकादमी, पुणे के संस्थापक सदस्य, मराठी के बहुचर्चित नाटककार-निर्देशक सतीश आलेकर पिछले दिनों मंजर थियेटर, प्रगति मैदान, नयी दिल्ली में आयोजित नाट्य समारोह में अपने बहुमंचित नाटक 'महानिर्वाण' का मंचन करने आये. इस अवसर पर उनसे हुई एक अनौपचारिक बातचीत के चुने हुए अंश यहां प्रस्तुत हैं.

नाटक 'शनिवार-रविवार' के एक दृश्य में सतीश आलेकर : 'रंगमंच मेरे लिए नशा है'

▣ विज्ञान के प्राध्यापक-अध्येता होने के बावजूद आप साहित्य और रंगमंच की तरफ क्यों आकर्षित हुए?

हमारे परिवार में शुरू से ही साहित्यिक माहौल रहा है. हमारे नाना श्री एन. वी. गाडगिल (सूचना प्रसारण मंत्री श्री.वी.एन. गाडगिल के पिता) साहित्यिक गतिविधियों में विशेष रुचि लेते थे, इसलिए साहित्य के संस्कार तो एक तरह से घुट्टी में ही मिले.

▣ आपके लिए 'रंगमंच' का अर्थ क्या है?

रंगमंच मेरे लिए एक नशा है. इस नशे के व्यसनी लोग ही इसका अहसास कर सकते हैं. केवल रंगमंच ही ऐसी विधा है जहां रचना और रचनाकार दोनों में इतनी उत्तेजक क्रिया-प्रतिक्रिया होती है. इसलिए रंगमंच में ही मैं अपने को अधिक क्रियाशील और सुरक्षित महसूस करता हूं और मेरी सबसे पहली प्रतिबद्धता भी केवल रंगमंच ही है.

▣ लेकिन प्रतिबद्धता का सवाल विचारधारा से भी जुड़ा हुआ है?

देखिए, मैं राजनैतिक व्यक्ति नहीं हूं और न ही किसी राजनैतिक दल से प्रतिबद्ध.

▣ तो क्या आप केवल मनोरंजन के लिए ही नाटक करते और लिखते हैं?

नहीं, ऐसा भी नहीं है, लेकिन मैं किसी भी सायास लायी गयी विचारधारा से सहमत नहीं हूं. एक सचेत रचनाकार के रूप में जो कुछ महसूस करता हूं, लिखता हूं.

▣ महाराष्ट्र में लोकप्रिय 'दलित रंगमंच' के प्रति आपका नजरिया क्या है?

मैं दलित रंगमंच का पक्षधर हूं, लेकिन अभी वह परिपक्व नहीं हुआ है. मैं दलित रंगमंच वालों की अधिक से अधिक मदद करता हूं.

□ आप खुद इस तरह के नाटक क्यों नहीं लिखते?

असल में मेरे अपने अनुभव शहरी हैं. जब तक मैं दलित रंगमंच के कथ्य को अपने अनुभव का हिस्सा न बना लूं, तब तक उसे लिखना बहुत बनावटी और आरोपित होगा.

▣ परंपरागत भारतीय लोक रंगमंच के बारे में आपका क्या नजरिया है?

इसकी आज जरूरत ही क्या है. नाटककार या निर्देशक के रूप में यह कोई आवश्यक नहीं कि हम लोकतत्वों या लोकशैलियों का पूर्वाग्रह रखें.

▣ आप किस विशेष नाटककार से प्रभावित हैं?

विजय तेंडुलकर से. उनके नाटक मुझे बेहद पसंद हैं.

□ हिंदी नाटकों में. . .

हिंदी नाटक मैंने ज्यादा नहीं पढ़े हैं, लेकिन 'आधे-अधूरे' को मैं बहुत पसंद करता हूं. मैं मानता हूं कि मोहन राकेश जन्मजात नाटककार थे.

▣ आपका नाटक 'शनिवार-रविवार' दिल्ली में विशेष पसंद नहीं किया गया. यह नाटक लोगों को 'मीडियोकर' लगा.

अब दूसरों की पसंद-नापसंद पर तो मुझे टिप्पणी नहीं ही करनी चाहिए. मराठी में ज्यादातर गीत संगीत और तमाशा वाली जो नाटक होते हैं, उनके विपरीत मैंने एक सीधी-सादी कामेडी लिखी जो काल्पनिक भी हो सकती है और यथार्थ भी. हो सकता है कुछ लोग इसे मीडियोकर कहना चाहें.

▣ आपने आज तक किसी दूसरे नाटककार के नाटक निर्देशित नहीं किये. क्यों?

किसी ने अनुरोध ही नहीं किया.

▣ दूरदर्शन पर धारावाहिकों का जो सिलसिला शुरू हुआ है, उससे रंगमंच कितना प्रभावित होगा?

यह तो सरकार की नीतियों पर निर्भर करता है. मुझे तो यह लगता है कि इसने रंगकर्मियों को एक नया आयाम और सक्रियता दी है. . .मैं यह भी मानता हूं कि जिस तरह सरकार दूरदर्शन के माध्यम से क्षेत्रीय एवं कला फिल्मों को 7-8 लाख रुपये देती है, उसी तरह अगर महीने में एक नाटक का प्रीमियर टी.वी. पर हो और उसके लिए एक लाख रुपये रंग संस्था को दिये जायें तो रंगमंच को प्रोत्साहन की दिशा में यह एक सार्थक काम होगा. इससे न केवल रंगकर्मियों को आर्थिक संरक्षण मिलेगा, बल्कि नाटक अपने अंतिम लक्ष्य व्यापक जनसमुदाय तक पहुंचेगा. ■

संक्षिप्त विज्ञापन

शिक्षा संबंधी

कहानी-कला, लेख-रचना, प्रूफरीडिंग, इंगलिश, पत्रकारिता, पत्रिका-संचालन और फीचर कथा व टी वी लेखन का घर बैठे पत्राचार द्वारा अध्ययन करें. अपने विषय की विवरणी मंगाइये. कहानी-लेखन महाविद्यालय, रजि. (द), अम्बाला छावनी-133001.

हमारे पत्राचार पाठ्यक्रम से आप पत्रकारिता का पूरा प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं. विवरणी मंगाइये. पत्रकारिता महाविद्यालय (द), जी-75, लाजपतनगर-1, नयी दिल्ली-110024.

अपनी अंग्रेजी सुधारें, हमारे 'अच्छी अंग्रेजी' पत्राचार पाठ्यक्रम में प्रवेश लें. विवरणी हेतु लिखें. इंस्टीट्यूट आफ जर्नलिज्म (द), पोस्ट बाक्स 3583, नयी दिल्ली-110024.

संपादक : नेमिचन्द्र. जैन

अंक चालीस

४०
1982

भारतीय रंगमंच का त्रैमासिक

दुर्गा दीक्षित

मराठी रंगमंच पर नयी पहल —दलित रंगमंच

मराठी रंगमंच पर आज एक ओर ऐसे 'हिट' नाटकों का ज़ोर है जो सैक्स और हिंसा के आधार पर भद्दे और भोंडे प्रदर्शनों से मात्र व्यावसायिकता निभा रहे हैं, तो दूसरी ओर, **बैरिस्टर, गुंतता हृदय, पुत्रकामेष्टी, संध्याछाया, घाशीराम कोतवाल, सूर्याची पिल्ले, महासागर, मित्राची गोष्ट** जैसी संगत नाट्य-प्रस्तुतियाँ हो रही हैं। बीच में रत्नाकर मतकरी लिखित **लोककथा '७८** या कुमार देशमुख के **स्मारक** जैसी इनी-गिनी प्रस्तुतियाँ भी होती हैं, जिनमें झोंपड़पट्टी तथा दलित जीवन के शोषण का यथार्थ चित्रण करने का प्रयास है। पर इनमें यथार्थ अंकन एवं प्रायोगिकता के साथ ही एक खास मध्यवर्गीय दृष्टिकोण एवं सहानुभूतिपरकता निहित है। इन सारी रंग-गतिविधियों में एक अन्य रंगमंच की पहल विशेष लक्षणीय है जो दलित रंगमंच नाम से उदित हुई है और अपनी सामर्थ्य से समृद्ध होती जा रही है।

सदियों से धर्म की आड़ में नारकीय जीवन जीने के लिए मजबूर, पीड़ित, बहिष्कृत, अछूत, दलित वर्ग की शोषण-जन्य यातनाओं और हताश एवं त्रासद विवशताओं-भरी स्थितियों ने वर्तमान युग में संघर्ष, विद्रोह और आक्रोश का स्वर पाया, जो दलित साहित्य की मूल चेतना बनकर साहित्य के विभिन्न रूपों में व्यक्त होने लगा।

दलित संघर्ष समाज में चलनेवाले संघर्ष का एक महत्त्वपूर्ण बिंदु है। वास्तव में यह गुलामी, शोषण और युगों से जारी मानवता की विडंबना को नष्ट करने का जबरदस्त प्रयास है, दलितता को नकार कर स्वातंत्र्य, समता और सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा का संकल्प एवं प्रयोग है। यही कारण है कि आक्रोश एवं अस्वीकार की प्रतिक्रियात्मक चेतना से युक्त इस संतप्त विद्रोही लेखन ने मराठी साहित्य को नयी दिशा दी। यह मानसिक क्रोध, विद्रोह और अस्वीकार की चेतना अब तक कविता, कहानी आदि साहित्य-रूपों में प्रकट होती आयी है। स्वतंत्रता के पश्चात इन दबे हुए सामाजिक स्वरों में जागृति आयी। उन्हें पहले रंगमंच की सही भाषा अवगत नहीं थी, पर उसकी शक्ति की पहचान अब उन्हें होने लगी है। उनकी संवेदना अब नाटक-जैसे सामूहिक अभिव्यक्ति के स्तर पर व्यक्त होने लगी है, उन्हें रंगमंचीय माध्यम मिल गया है। अन्याय के खिलाफ़ प्रतिकार, संघर्ष और अमानवीय निर्घृण यातनाओं का आवेगमय दर्शन करने के समर्थ माध्यम के लिए इस वर्ग ने रंगमंच को अपनाया है। इसीलिए दलित नाटक के ही रूप में नहीं, बल्कि नाटक-लेखन के साथ रंग-प्रस्तुतियों, दलित नाट्य सम्मेलन के आयोजनों, दलित रंगमंच-विषयक संगोष्ठियों तक इसने गति एवं दिशा ग्रहण की है।

वैसे दलित रंगमंच के रूप में उदीयमान वर्तमान रंग-प्रवृत्ति के दर्शन महाराष्ट्र के लोकनाट्य में अल्पांश में होते रहे हैं। महाराष्ट्र के ललित, दशावतार, बहुरूपी, तमाशा आदि विभिन्न नाट्य परंपराओं के वहन, रक्षा एवं वृद्धि के कार्य में महार-मोग, शूद्र कहलानेवाले दलित वर्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लावणी-गायकों में ही नहीं, बल्कि रचना करने वालों में भी दलित कवि हो गये और आज भी हैं। फिर भी लोक रंगमंच पर इन लोगों ने प्रकारांतर से प्रस्थापित मानव-जीवन एवं मूल्य-मान्यताओं की रक्षा की है। पर विभिन्न रंग-कार्यों और विशेषताओं तथा उनके विभिन्न आयामों के अन्वेषण एवं प्रयुक्तियों के बावजूद, लोक रंगमंच, कथ्य और नाट्य-वस्तु के स्तर पर, परंपरागत सवर्णाधिष्ठित जीवन, एवं मूल्यों से किसी प्रकार मुक्त नहीं था।

दलित रंगमंच इससे नितांत भिन्न है। यद्यपि ये रंग-कर्मी लोक मंच के कुछ प्रदर्शनीय तत्वों को—उसके यथार्थवादी पक्ष, लौकिकता से निकटत्व, प्रेक्षकों से जुड़ाव, आदि बातों को—आवश्यकतानुसार ग्रहण करते रहते हैं, फिर भी पारंपरिक नाट्य-चेतना को एकदम अस्वीकार करते हैं। उनकी चेतना ही सर्वथा भिन्न है, जिसे संप्रेषित करना चाहते हैं, वह अनुभव सर्वथा भिन्न है। इसी कारण दलित रंगमंच की हर पहल जानबूझकर सहेतुक की जा रही है।

बाबा साहब आंबेडकर की प्रेरणा से जागृत होकर, धर्म और संस्कृति की आड़ में वर्षों से दलित, पीड़ित, अभाव और दबाव में पिसे इस वर्ग को आक्रामक क्रांति का संदेश मिला। न्याय की माँग के लिए रंगमंच का माध्यम मिलने पर वह जागरण एवं आक्रोश के स्वरों से युक्त रंग-गतिविधियों के द्वारा स्थितियों में सुधार एवं समाधान ढूँढ़ने की कोशिश में लगा है। इस दिशा में इससे पूर्व कुछ प्रयास अवश्य हुए थे। किसन फागुजी बनसोड को वस्तुतः दलित रंगमंच का प्रवर्तक मानना चाहिए, जिन्होंने सन १९३० में 'संत चोखा मेला' नाट्य-प्रस्तुति द्वारा सवर्णों द्वारा किये जानेवाले दलितों के शोषण, अन्याय, अत्याचार को प्रस्तुत कर समाज-प्रबोधन के कार्य का आरंभ किया। दलित मुक्ति आंदोलन के दौरान भीमराव घोंडिबा कडलक तथा मराठी के विख्यात दलित लेखक अन्नाभाऊ साठे ने, तमाशा के वग-नाट्यों द्वारा अन्याय-अत्याचार का ज्वलंत चित्रण कर, दलितों को दिखाई जानेवाली झूठी सहानुभूति का तीव्र निषेध एवं धिक्कार किया था।

अमेरिका के ब्लैक थिएटर से दलित रंगमंच का कुछ रिक्ता जोड़ा जा सकता है। पर कई समान बिंदुओं के होते हुए भी दलित रंगमंच उससे सर्वथा भिन्न तथा अपनी विशिष्टताओं से युक्त है। ब्लैक थिएटर के आंदोलन का सूत्रपात नीग्रो लोगों की सदियों की गुलामी के बंधनों को तोड़ने तथा उनमें स्वाधीनता की लालसा उत्पन्न करने, उन पर किये जाने वाले निर्दयतापूर्ण अत्याचारों के खिलाफ़ आग भड़काने के उद्देश्य से हुआ था। अमेरिका के काले अफ्रीकी गुलामों ने अपने जीवन में भोगी हुई अनुभूति, पीड़ा, असह्य शोषणजन्य उपेक्षा के जीवन-बोध एवं जागरण के एहसास को परंपरागत संगीत, वाद्य एवं अपनी स्वाभाविक भाषा के माध्यम से रंगमंच पर अभिनीत करना आरंभ किया, जिससे ब्लैक थिएटर के आंदोलन का जन्म हुआ। तीन-चार सौ वर्षों की दीर्घ परंपरा से युक्त ब्लैक थिएटर आज न्यू फ़ैडरल थिएटर, न्यू ब्लैक थिएटर, ब्लैक आर्ट थिएटर आदि रंगमंचीय गतिविधियों एवं संस्थाओं के रूप में कार्यशील है। अतीत के जीवन एवं इतिहास की पुनर्व्याख्या का प्रयास, धर्म तथा नीति परंपरा का अस्वीकार, सत्ता का विरोध, न्याय, मुक्ति एवं सुख सुविधाओं से परिपूर्ण जीवन की माँग, इस पूरे आंदोलन के पीछे मुख्य प्रेरणा थी।

ब्लैक थिएटर के उदय एवं उसकी विकासशील गति-विधियों को देखकर प्रस्थापितों ने उस रंग-प्रवृत्ति के कला-रूप पर प्रश्नचिह्न लगाया था। वही स्थिति आज दलित रंगमंच के संबंध में भी हो रही है। पर वहाँ ब्राडवे को चुनौती थी। वहाँ परंपराप्रियता, रूपबंध, मूल्य-निर्वाह, सभ्यता-संकेत, आभिजात्य, अभिनय-संकेतादि सबको त्याग कर, रास्तों-चौराहों से लगाकर रंगमंच तक, प्रस्तुतियाँ जारी थीं, और वे गोरे लोगों द्वारा किये गये उनके विपर्यस्त, गर्हणीय, वासना, हिंसामूलक जीवन-चित्रण को सख्त धिक्कार कर अपने सही जीवन को साकार करते रहे। अतः आरंभ में वह रंगांदोलन नितांत प्रतिकारात्मक रूप में, गोरी चमड़ी के नीचे छिपी हिंसा, पिशाचता और वासनाजन्य पशुता को उघाड़कर, अपने वर्ग की मुक्ति और सुख-संपन्न जीवन की आकांक्षा से फला-फूला।

दलित रंगमंच के प्रति भी सवर्णों और तथाकथित प्रतिष्ठितों की यही मान्यता एवं रुख है। पर सदियों से जिस वर्ग की वाणी बंद थी, अपने अन्यायजनित जीवन की वास्तविक स्थिति का भान नहीं था, उनको आज नयी भाषा, नया स्वर, नयी रंग-चेतना मिली है। दलित रंगमंच विद्रोह का

स्वर लेकर उठा है। वह प्रस्थापित तथाकथित उच्चवर्णियों द्वारा किये जानेवाले अन्याय-अत्याचार का यथार्थ, पर कुछ भडकीला, चित्रण करता है। दलित रंगकर्मी आज की पूरी स्थिति को नकार कर, तोड़कर, संघर्ष की अग्नि जलाने की बुलंद चुनौती देते हैं। वे सभी प्रकार की वंचना, जुल्म-जबरदस्ती के नक़ाब को उघाड़कर सामाजिक प्रतिबद्धता से प्रबोधन में कटिबद्ध हैं। यही कारण है कि दलित रंगमंच का सामाजिक प्रबोधन का स्वर, अधिकारों की रक्षा का एहसास, तथा उसकी यथार्थवादी प्रस्तुति किसी हद तक उग्र हैं। बाबा साहब का 'पढ़ो, लड़ो, समर्थ बनो' का क्रांतिकारी स्वर, तथा महात्मा ज्योतिबा फुले से सामाजिक समता की प्रेरणा इस रंगाभिव्यक्ति के मूल में है।

कथ्य से अधिक जुड़ाव और निकटता एवं सोद्देश्यता के महत्व के कारण, तथा आवश्यक अपेक्षित तटस्थता के अभाव में, यह नाट्याभिव्यक्ति कभी-कभी अनगढ़ और भड़कीली भी होती है, पर यही उसकी स्वाभाविकता भी है। देवता, धर्म, परंपरा, संस्कृति, मूल्य, मान्यता, आदर्श आदि के नाम पर अविरत जारी तमाम विषमता के खिलाफ़ जबरदस्त विद्रोहात्मक क्रांति का नारा दलित रंगमंच की विशेषता है। दलित रंगमंच पर ग्राम या नगर का प्रश्न नहीं, किसी एक वर्ग या जाति की समस्या नहीं, पर समस्त दलित जीवन की जबरदस्त चेतना, नाट्य-वस्तु को तीव्र यथार्थ जीवनानुभव की वास्तविक कटुताओं की आँच से ज्वलंत कर देती है।

यह चेतना अधिकांशतः एकांकी नाटकों के रूप में अभिव्यक्त एवं अभिनीत होती रही है। दलितों के यातनापूर्ण अतीत का आलेखन, अस्वीकारात्मक विद्रोह के स्वर, प्रक्षोभक भाषा में व्यक्त होकर पाठक-प्रेक्षक को बेचैन कर देते हैं। पुरोहित वर्ग की दबाव-नीति एवं आतंक, दलितों की दासता, मूक वेदना, जीवन के अर्थ की प्रतीति, खीझ, चिढ़ आदि तत्व गंगाधर पानतावणे के **मृत्युशाला**, प्रेमानंद गज्वी के **घोटभर पाणी** (चुल्लू भर पानी), रामनाथ चव्हाण के **आधारस्तंभ, मला उत्तर हवयं**, दत्ता भगत के **आवर्त** और **पराभव**, और य० भि० चिटणीस के **युगयात्रा** में व्यक्त हुए हैं।

इधर दो-तीन वर्षों से दलित रंगमंच पर पूर्णाकार नाटकों के प्रदर्शन की प्रवृत्ति बढ़ी एवं जारी है। औरंगाबाद की अश्वघोष संस्था ने करुण भगत के निर्देशन में **मुखवटा** प्रस्तुत किया। नागपुर में दलित पँथर ग्रुप द्वारा प्रभाकर दुपारे की नाट्य-प्रस्तुतियाँ अधिकांशतः 'सड़क रंगमंच' के रूप में ही जारी हैं, जो वर्तमान दलित चेतना को समर्थ वाणी दे रही हैं। साथ ही दलित पँथर ग्रुप रंगमंचीय गतिविधियों में भी संलग्न है। मराठवाड़े का दलित थिएटर और पुना का दलित रंगभूमि भी इस दिशा में कार्यशील हैं। इनमें भी दलित रंगभूमि नाट्य-संस्था की सक्रियता विशेष लक्षणीय है। उसके द्वारा इधर दलित रंगमंच की कई प्रवृत्तियों सहित भि० शि० शिंदे लिखित **कालोखाच्या गर्भात** (अँधेरे के गर्त में) नाट्य-प्रस्तुति ने प्रायः सारे महाराष्ट्र में धूम मचा दी। इस नाटक में सवर्णों और तथा कथित उच्चवर्णियों द्वारा दलितों पर किये जानेवाले अत्याचार, पशुतापूर्ण व्यवहार, आतंक और दबाव का यथार्थ चित्रण, उससे उभरते उनके स्वर, संगठन, आक्रोश, उठाव, आदि बातों को, उत्कट नाट्य-वस्तु के माध्यम से साकार करने का सुंदर एवं सफल प्रयास है। एक तरह से यह अँधेरे के गर्त में से किरणों को छूने की कोशिश है। इसलिए इसका कुछ विस्तृत विवरण उपयोगी होगा।

सूत्रधार आरंभ में मंच पर उपस्थित होकर प्रेक्षकों को ज्वलंत, साफ़, मुँहतोड़ शब्दों में अनुत्तरित प्रश्न पूछकर जागृत रखता है और विद्रोहात्मक तीक्ष्ण वाग्बाणों से उपस्थित लोगों का मर्मभेद करता जाता है। साथ ही चक्राकार घूमते हुए दलित बांधव, नंगे बदन, अंधकार की गुफा में अपनी न्यून-भाव-ग्रंथि में लिप्त दिखाये जाते हैं, और दिव्य पुरुष के दर्शन से बोध पाकर बंधमुक्ति की घोषणाएँ करने लगते हैं। फिर बाबासाहब के अस्थिकलश की साक्षी में दलितों का घोषणा-पत्र सुनाया जाता है कि 'मानव के लिए जियेंगे, राष्ट्र के लिए मरेंगे'।

नाट्य-वस्तु में आरंभ से अंत तक धर्म, जाति, संस्कृति के अतिरिक्त शासन, सत्ता द्वारा भयंकर शोषण के अंकन, आतंक और दहशत के नंगे नाच, क्रूरता और अमानवीयता के लांछनभरे कार्य आदि के विरुद्ध जबरदस्त संघर्ष और उसमें जीत आदि को प्रस्तुत किया गया है। यह सब कुछ ज़ोरदार शब्दों के माध्यम से कार्य-कलापों, समूह-रचनाओं के द्वारा, संगीत की सहायता से, साकार किया जाता है।

निर्देशक टेक्सास गायकवाड के साथ अविनाश आंबेडकर (नातबा सोनावणे), धनंजय निकालजे (फालगुन्या), प्रकाश खुडे (वस्ताद), मिलिंदसालवे (सन्ताप्या) तथा अक, खरान्त, त्रिशिला शिंदे, भानुदास गायकवाड, वसंत गायकवाड आदि का अभिनय प्रेक्षकों को बेचैन और समीक्षकों को सतर्क करता है। नाट्य-प्रेमियों ने इस प्रस्तुति को काफ़ी सराहा।

दलित रंगभूमि द्वारा दूसरा नाटक **आमी देशाचे मारकरी** (हम हत्यारे देश के) तिलक स्मारक मंदिर के रंगमंच पर कुछ समय पहले प्रस्तुत किया गया। रंगमंच पर लकड़ी की तीन चौखटों के पीछे एक चौखट, काले परदे की पृष्ठभूमि पर भगवा झंडा, और इसके बीचोबीच अंकित स्वस्तिक का पवित्र चिन्ह। झीने परदे के पीछे बैठे गुरुजी अपने शिष्य को धमकाकर पूछ रहे हैं: 'यह ऐसा तुझसे हुआ कैसे ?' शिष्य फूट-फूटकर रोता हुआ घटना बता रहा है।

इस प्रसंग से आरंभ होकर नाटक लगातार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, उसकी कार्यप्रणाली, स्वयंसेवक, उनकी नीति-व्यवहार, सरसंघ संचालक अप्पा साहब के बाहरी आदर्श और खोखली नीति, दुश्चरित्र आदि की प्रत्यक्षदर्शी प्रसंगों के माध्यम से धज्जियाँ उड़ाता जाता है, और आद्यंत ढोंग-ढकोसलों के खिलाफ़ आक्रोश व्यक्त करता हुआ इन सबका भंडाफोड़ करता है। सुरीले प्रसंगोचित संगीत की सुंदरतम योजना से कई नाटकीय प्रभाव शब्दों और अभिनय के बिना ही दृश्यमान हो गये हैं। संचलन की पृष्ठभूमि पर सुरीला कोरस नाटक में आद्यंत गुंजित है :

पीछे कभी नहीं हैं हम
बढ़ते कदम यदि आगे-आगे
सुनो, सुनो, यह कथा हमारी
हम देश के हैं हत्यारे हम देश के हैं हत्यारे।

दलित रंगभूमि के रंगकर्मियों की यह विशेषता है कि वे अधिकांश युवा वर्ग के हैं। **कालोखाच्या गर्भात** नाटक की प्रस्तुति को उन्होंने शहर तक सीमित नहीं रखा, बल्कि महाराष्ट्र के छोटे-छोटे गाँवों में भी प्रदर्शित करते रहे हैं।

दलित रंगमंच अभी बाल्यावस्था में है। मराठी रंगमंच की यह नयी पहल जितनी ताज़ा है, नूतन है, उतनी ही अभी अपरिपक्व भी। अभी उसने रंगादोलन का रूप नहीं ग्रहण किया है। पर इन तीन-चार वर्षों में उसकी आकांक्षाएँ बहुत विस्तृत होती चली हैं।

कथ्य की नूतनता एवं विशिष्टता के साथ इन रंगकर्मियों की गतिविधियों एवं रंगकार्य को देखकर यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि क्या दलित रंगमंच की कलात्मक भिन्नता या विशिष्टता भी है या केवल कथ्य की ही विशिष्टता है ? किस कला-रूप के आधार पर या रंग-तत्वों के कारण उसका स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार किया जा सकता है ? परंपरागत लोकनाट्य की शैली अथवा यथार्थवादी रंगमंच से किस अर्थ में दलित रंगमंच की प्रेरणा, प्रवृत्तियाँ एवं कलात्मक विशिष्टताएँ उसे स्वतंत्र रूप देती हैं अथवा शेष रंगमंच से उसे अलगाती हैं ?

दलित रंगकर्मियों की स्पष्ट धारणा है कि वे मध्यवर्गीय दृष्टिकोण से अन्याय-अत्याचार एवं शोषणजन्य समस्याओं को मुखर करने के प्रयोग एवं प्रयासों को अपर्याप्त ही नहीं मानते, बल्कि उन्हें अस्वीकार करते हैं। उनका विश्वास है कि हमारी व्यथा-वेदना, संघर्ष, विद्रोहपूर्ण बोध की अभिव्यक्ति प्रचलित रंग-पद्धतियों, भाषा, अभिनय शैलियों एवं रंगमंच के विभिन्न उपकरणों के परंपरागत रूपों के माध्यम से संभव नहीं। किंतु यह भी सच है कि यद्यपि कथ्य को उन्होंने ठीक समझा है, चेतना को वहन एवं व्यक्त करने की सामर्थ्य उनके पास है, सक्षम अनुभूति है, फिर भी रंगमंच का स्वरूप उनके सामने उतना स्पष्ट नहीं है। मगर दलित रंगकर्मी इस रंगान्वेषण में तत्पर हैं, सतर्क हैं। वस्तुतः उनकी विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से वह स्वरूप उभर रहा है।

लोकनाट्य की कुछ विशिष्टताओं, अर्थात गीत, धुन, समूह-क्रियाओं आदि को स्वीकार करने के बावजूद, वे मात्र लोकनाट्यात्मक शैली को नहीं अपनाना चाहते। यथार्थवादी मंच की वास्तविकता को स्वीकार करके भी वहाँ तक पहुँचना उनका उद्देश्य नहीं है। वे इन तत्वों को आधुनिकीकरण, फ़ैशन और प्रयोगशीलता के नाम पर ग्रहण करने की बजाय नाट्यानुभूति के संप्रेषण के लिए आवश्यक तत्वों के रूप में स्वीकार करते हैं। वे संस्कृत नाट्य-परंपरा, प्रचलित अभिनय पद्धति तथा रंग-संकेतों को तोड़कर नितांत भिन्न रास्ते खोजना चाहते हैं। जो उनके जीवन से प्रत्यक्षतः जुड़ी हुई है, जिसे वे प्रत्यक्षतः भोग रहे हैं, उस सांस्कृतिक और व्यावहारिक जीवनधारा में सहजतया स्वीकृत कलाभिव्यक्ति के माध्यमों एवं रूपों को अपनाकर, उनके माध्यम से अपने कथ्य को संप्रेषित करने का उनका प्रयास है।

यह समर्थ माध्यम है उनकी अपनी भाषा, उसकी प्रकृति, शब्दावली, मुहावरा, लहजा आदि; साथ ही उनके जीवन में स्वाभाविक रूप में अनुस्यूत संगीत, नृत्य, गायन, वादन आदि कलाभिव्यक्तियाँ, उनकी विभिन्न पद्धतियाँ, विशिष्ट वाद्य-संगीत, उन्हें बजाने की शैलियाँ, मनोरंजन एवं कलाभिव्यक्ति के अन्य माध्यम और ढंग आदि। इन सबकी निरंतर खोज एवं प्रयोग जारी है। दलित रंगकर्मी अपनी नाट्यात्मक अभिव्यक्ति के प्रयासों में प्रचलित, बाहरी राहों से हटकर अपना स्वतंत्र रास्ता नाप रहे हैं। यही कारण है कि परंपरागत रंग-संकेतों को तोड़कर नयी पद्धतियों के द्वारा अपने कथ्य को व्यक्त करने के उनके प्रयासों में नये कला-मूल्य एवं रंग-प्रणाली की उद्भावना की बड़ी संभावनाएँ हैं। इन सब स्थितियों में से दलित रंगमंच उभर रहा है, अधिकाधिक सक्षम और अपने-आप में विशिष्ट बन रहा है।

A scene from Ratnakar Matkari's 'Lokkatha', produced by IPTA Bombay, directed by Ramesh Talwar, in a performance from Calcutta, Seagull Theatre Quarterly, Issue 2, 1994